‘चित्शक्ति विलास’ के एक उद्धरण का परिचय

वर्ष १९६९ का मई का महीना था। गुरुदेव सिद्धपीठ में गर्मी बढ़ती जा रही थी, इतनी अधिक कि हवा में भी हल्की-सी चमक प्रतीत होने लगी थी। स्वामी मुक्तानन्द अपनी आत्मकथा लिखने की योजना बना रहे थे।

जब बाबा जी [जैसे कि स्वामी मुक्तानन्द को लोग प्रेम से सम्बोधित करते थे] ने एक सिद्धयोगी से यह ग्रन्थ लिखने की अपनी योजना के बारे में चर्चा की तो उन्होंने बाबा जी को सुझाव दिया कि गणेशपुरी के अत्यधिक गर्म वातावरण में इतने बड़े कार्य का आरम्भ करने के स्थान पर वे भारत के पश्चिमी घाट में स्थित महाबलेश्वर जाएँ। पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण, महाबलेश्वर की जलवायु ठण्डी है और वह स्थान पूर्ण केन्द्रण के साथ कार्य करने के लिए उपयुक्त रहेगा। वहाँ के प्रवास की व्यवस्था करने में ये सिद्धयोगी आर्थिक रूप से सक्षम थे और उन्होंने यह व्यवस्था करने की इच्छा प्रकट की।

बाबा जी ने उनका यह आमन्त्रण स्वीकार कर लिया और वे, उन सिद्धयोगी और कुछ अन्य लोगों के साथ कार से महाबलेश्वर के लिए चल पड़े। ये सब लोग ८ मई को वहाँ पहुँचे। जब उस क्षेत्र में प्रवेश किया तो वहाँ के वातावरण में ठण्डक थी और सुबह का कोहरा घाटी में नीचे तक छाया हुआ था। कुछ दिनों बाद, सोमवार, १२ मई, १९६९ को बाबा जी ने इस लेखनकार्य का श्रीगणेश किया।

अगले बीस दिनों तक, बाबा जी का लेखन चलता रहा—अधिकांशतः वे स्वयं ही लिखते थे और कभी-कभी कुछ अंश, वे अपने साथ आए दो सिद्धयोगियों से बोलकर लिखवाते थे, उनमें से एक थे दादा यन्दे। छपने पर यह ग्रन्थ लगभग ३०० पृष्ठों का होने वाला था। ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार हो जाने पर, बाबा जी ने अपने साथ महाबलेश्वर आए सभी लोगों को बुलाया। एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया जिसमें बाबा जी ने अपने ग्रन्थ का नाम सबको बताया : चित्शक्ति विलास।

छप जाने पर ‘चित्शक्ति विलास’, तत्काल ही एक गौरव ग्रन्थ, सिद्धयोग पथ की एक आधारशिला बन गया—एक अनूठा, असाधारण ग्रन्थ जिसमें स्वयं बाबा जी की साधना और प्राप्ति की विस्तृत झलकियाँ दी गई हैं।

बाबा जी की इस महान कृति के लेखन की ५२वीं वर्षगाँठ का उत्सव मनाने के लिए सिद्धयोग पथ की वेबसाइट पर बाबा जी के ग्रन्थ में से एक उद्धरण प्रकाशित किया जा रहा है। यह उद्धरण ग्रन्थ के ‘चिद्विलास’ शीर्षक अध्याय से लिया गया है।

प्रकरण चौंतीस

चिद्विलास

पृष्ठ १९७-१९९

अब भी मैं ध्यान करता हूँ तो ध्यान में तन्मय होने पर नीलरश्मि, नीलपुंज और उस चिन्मय के बीच नीलबिन्दु देखता हूँ। वह मृदु, चिन्मय तेजपुंज अति सूक्ष्मरूप से हिलते हुए, चमकते हुए सभी अवस्थाओं में देखता हूँ। भोजन करते, पानी पीते, स्नान करते, बस वह मेरी आँखों के सामने खड़ा है! सोता हूँ तो निद्रास्थान में भी वह खड़ा है। अब मेरी दृष्टि द्वैत-अद्वैतरहित हो गई है, क्योंकि द्वैत-अद्वैत दोनों में वही व्याप्त है। अब देश-काल-वस्तुभेद की मर्यादा नहीं रही। नील का सर्वत्र सूक्ष्म जो प्रसरण है वह मेरी आत्मा में भी विश्वाकार से व्याप्त है। न दिखने वाला भी मैं देखता हूँ। जैसे न दिखने वाला गुप्त धन मन्त्र-अंजन लगाने से दिखता है, वैसे ही श्रीगुरुदेव की कृपा से और पारमेश्वरी कुण्डलिनी के प्रसाद से वह दिव्य साक्षात्कार कराने वाला नील अंजन मेरी आँखों में लग जाने से, न दिखने वाला यानी अति सूक्ष्म भी दिखता है। चारों तरफ़ मेरी आत्मा की ही विश्वाकार व्याप्ति है ऐसी अब मेरी पूर्ण समझ है। प्रपंच है ही नहीं, कभी हुआ ही नहीं; जिसे हम प्रपंच कहते हैं वह तो चितिशक्ति का केवल चिन्मय विलास है, ऐसा मेरा पूर्ण निश्चय है। 'सोऽहम्' में जिसको 'सः' और 'अहम्' कहते हैं, उसको मैं सहज में समझता हूँ। वेदान्त जिसको 'तत्त्वमसि' विद्या कहता है और जिस विद्या का परिणाम ब्रह्मानन्द कहा गया है, वही मेरे अन्दर सूक्ष्मरूप से स्फुरने वाला मेरा स्वरूप है।

इसके पुष्टीकरण के लिए 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' ग्रन्थ से प्रमाण देता हूँ। उसमें कहा गया है कि परमात्मा शिव की ऐसी दृष्टि है :

... श्रीमत्परमशिवस्य पुनः विश्वोत्तीर्ण-
विश्वात्मक-परमानन्दमय-
प्रकाशैकघनस्य एवंविधमेव
शिवादि-धरण्यन्तं अखिलं
अभेदेनैव स्फुरति, न तु वस्तुतः
अन्यत् किंचित् ग्राह्यं ग्राहकं वा,
अपि तु श्रीपरमशिवभट्टारक एव इत्थं
नानावैचित्र्यसहस्रैः स्फुरति।[१]

अर्थात्, भगवान परशिव के लिए, जिसको हम परमेश्वर पराशक्ति कहते हैं, विश्व नाम की कोई वस्तु नहीं है। वे केवल सत्य, नित्य, निर्गुण, निराकार, व्यापक और पूर्ण हैं। उनको शिव से लेकर पृथ्वी तक यानी स्थावरजंगमात्मक दिखने वाला, प्रकट-अप्रकट सभी जगत अभेदरूप से परमानन्दमय प्रकाशरूप अपने जैसा ही प्रतीत होता है। वस्तुतः उनके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है, द्रष्टा-दृश्य भाव भी नहीं है, ग्राह्य-ग्राहक भाव भी नहीं है, जीव-शिव भाव भी नहीं है, जड़-चेतन भाव भी नहीं है। अपितु श्रीमत् परमशिव परमेश्वर अकेला ही इस जगत के चित्र-विचित्र अनेक रूपों में स्फुरता है। यह विश्व भगवान का शरीर है और विश्वरूप में परमशिव ही अपनी आत्मस्थिति में खड़ा है ऐसा अब मैं देखता हूँ।

ज्ञानदेव के उस अभंग के, जिससे यह ग्रन्थ [चित्शक्ति विलास] लिखना शुरू किया था, अन्तिम दो चरण इस प्रकार हैं :

तयाचा मकरंद स्वरूप ते शुद्ध। ब्रह्मादिका बोध हाची झाला॥
ज्ञानदेव म्हणे निवृत्ति प्रसादे। निजरूप गोविंदे जनी पाहता॥

'जिस नीलेश्वर का मैंने वर्णन किया है, उसके अन्दर उसका जो मूल है, उसका जो रस है, यानी जो शुद्ध परमानन्दमय बोध है, वही परमात्मा का शुद्ध स्वरूप है। ब्रह्मा से लेकर सभी ऋषि-मुनियों को यही बोध हुआ है।' साक्षात्कार का अनुभव बताते हुए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, 'श्रीसद्गुरु निवृत्तिनाथ के कृपाप्रसाद से प्राप्त मेरा अन्तर्गत निजरूप, जो नील है, वही परमात्मा श्रीगोविन्द है। उसको सब जनों में मैं देखता हूँ।'

सर्वव्यापक परमेश्वर, परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ नहीं है, यह वेदान्त का कथन सत्य है। वस्तुतः परमात्मा का यह ज्ञान ही जीवन का सार है, जिस ज्ञान को पाकर हमारा संसार अमृतमय बन जाता है। परमात्मा के ऐसे ज्ञान की मानव को अत्यन्त आवश्यकता है। वह ज्ञान शक्तिपात से ही सम्भव है। सिद्धकृपा से ही सभी महात्माओं ने अपने अन्तर में परमेश्वर को पाया है। ऊपर कहे हुए, ज्ञानेश्वर महाराज के जो अनुभव हैं, वही सभी के पूर्ण अनुभव हैं। जनक-सनक-नारद आदि मुनियों ने अपने जिस निज स्वरूप का अनुसन्धान किया, वही परम्परागत परमानन्दमय ज्ञान का तत्त्व है, वही परमानन्दमय गोविन्द है जो सर्व जनों में दिखता है। ज्ञानी से लेकर अज्ञानी तक सर्व मानवों में वह दिखेगा, चाहे वे मूढ़ हों अथवा पागल, क्योंकि पागलपना और मूढ़ता मन की वृत्ति है, आत्मा परमशुद्ध है। सहस्रदल के ब्रह्मरन्ध्र के बीच जिसका निवास है वह षोडशकलातीत पुरुष निरन्तर वहाँ रहता है। इस पुरुष को 'सत्रहवीं' भी कहते हैं। षोडशकला के ऊपर जो 'सत्रहवाँ' है वह आत्मा है। जिसकी दृष्टि

पूर्ण शुद्ध हो गई है, उसको आत्मरूप नील वर्ण सहस्रदल में भासमान होता है। ज्ञानेश्वर कहते हैं कि यह परमगुह्य तत्त्व मैं सद्गुरु की कृपा से कहता हूँ।

यथार्थ सत्य यह है कि यह जगत 'चिद्विलास' है, चितिशक्ति का उन्मीलन है, इसलिए चिति का ज्ञान न होने से जगत भासता है। जब चितिज्ञान होगा तब जगत नहीं दिखेगा, सर्वत्र चिति ही दिखेगी।

वसुगुप्ताचार्य का यह कथन सत्य है :

> *इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत*
> *स पश्यन्सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः*
>
> जो इस सम्पूर्ण जगत को ब्रह्माण्डीय चेतना की क्रीड़ा के रूप में देखता है, निस्सन्देह, वह आत्मसाक्षात्कारी है; वह इस शरीर में होते हुए भी मुक्त है।[२]

© २०२१ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

---

[१] क्षेमराज, प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र ३ पर व्याख्या।

[२] स्पन्दशास्त्र।